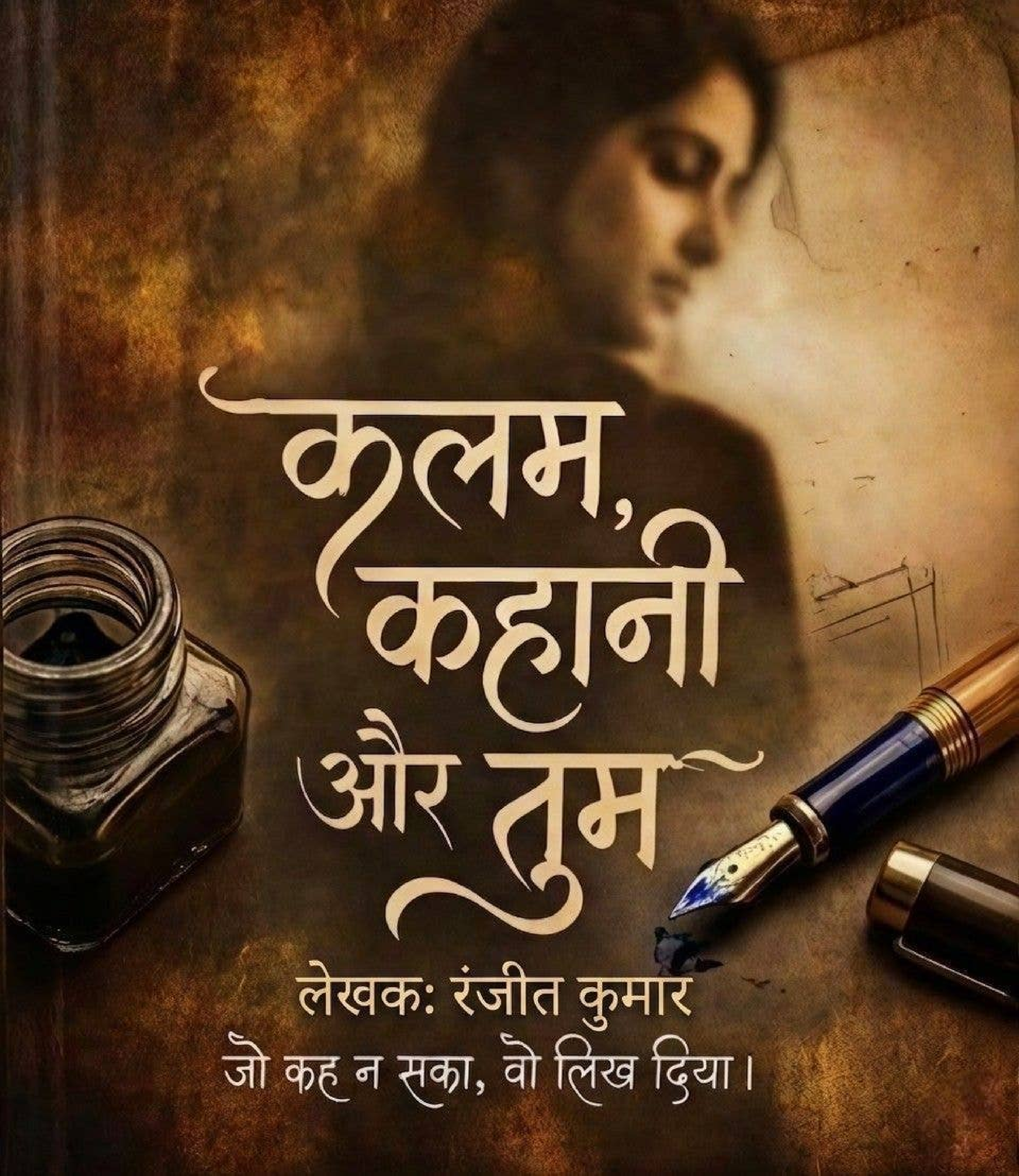

कलम, कहानी और तुम
लेखक: रंजीत कुमार
जो कह न सका, वो लिख दिया।

प्रस्तावना

ज़िंदगी में कई शब्द ऐसे होते हैं जो होंठों तक तो आते हैं, पर बयां नहीं हो पाते। कुछ जज्बात खामोशियों में दफन हो जाते हैं और कुछ यादें वक़्त की धूल में खो जाती हैं। 'कलम, कहानी और तुम' महज कागज़ पर उकेरे गए शब्द नहीं हैं, बल्कि उन अनकहे अहसासों का आईना हैं जिन्हें मैं कभी ज़ुबान से कह न सका। जब आवाज़ साथ छोड़ गई, तब इस कलम ने मेरा हाथ थामा और वो सब लिख दिया जो दिल की गहराइयों में कहीं कैद था।

वक्त की धूल में जो यादें धुंधली पड़ गई थीं,
उन्हें इस स्याही ने फिर से नया पैगाम दिया।
जो दर्द बयां न हो सका कभी महफ़िल में,
उसे मेरी कलम ने 'कहानी' का नाम दिया।

"कलम कहानी और तुम"जो कह न सका, वो लिख दिया।"

-लेखक : रंजीत कुमार

<u>मौत की दहलीज और माँ की ममता :-</u>

मेरी ज़िंदगी की कहानी उस स्याही से लिखी गई है, जिसमें आंसू भी हैं और संघर्ष भी। जब मैं महज़ 6 साल का था, तब मौत मेरे दरवाज़े पर दस्तक दे रही थी। एक ऐसी बीमारी ने मुझे घेरा जिसने हँसते-खेलते बचपन को बिस्तर पर ला पटका। मेरी माँ, जिसकी आँखों में मेरे लिए सिर्फ़ सपने थे, अब उनमें सिर्फ़ ख़ौफ़ था। गाँव के हर डॉक्टर ने हाथ खड़े कर दिए थे। माँ मुझे अपनी गोद में उठाए दर-दर भटकती रही, लेकिन जवाब हर जगह एक ही मिला—"यह बच्चा अब नहीं बचेगा"। खुदा शायद मुझे इस दुनिया में रहने की इजाज़त नहीं दे रहा था, पर किस्मत का पन्ना अभी पलटना बाकी था।

दवा काम न आई, न दुआओं में वो दम रहा...
हर डॉक्टर ने कह दिया, बस अब कुछ ही दम रहा।
पर माँ का आँचल था, जो ढाल बनकर खड़ा था...
मौत छोटी पड़ गई, माँ का हौसला इतना बड़ा था।

उस दौर में मेरी देह हड्डियों का एक ढांचा मात्र रह गई थी, पर माँ की हिम्मत पहाड़ जैसी थी। गाँव की पगडंडियों पर जब माँ मुझे गोद में लेकर दौड़ती थी, तो उसके पैरों के छाले नहीं, उसका कलेजा फट रहा था। लोग कहते थे "रंजीत अब नहीं बचेगा," पर माँ की आँखों की वो आग यमराज को भी पीछे हटने पर मजबूर कर रही थी।

जब दुनिया ने कह दिया कि अब हार मान ले...
तब माँ की ममता ने कहा, 'तू अपनी जान मान ले'।
हाथों की लकीरों में मौत का मंजर लिखा था...
पर माँ की दुआओं ने खुदा का फैसला ही बदल दिया था।

अनजानी राहें और वो अपरिचित शहर :-

वक्त की गर्दिश ने कब रुख बदला, पता ही न चला। कभी सोचा नहीं था कि जिंदगी इस मोड़ पर लाकर खड़ा कर देगी जहाँ खुद की सुध-बुध भी पराई हो जाएगी। गाँव की गलियों में खोया हुआ मैं, जब अपनी ही सुध खो बैठा, तो फरीदाबाद से बड़े भाई साये की तरह चले आए। मेरी हालत देखकर उनकी आँखों में जो व्याकुलता थी, उसे मैं समझ न सका, पर उन्होंने ठान लिया था —"इसका इलाज अब शहर में होगा।"

मजबूरियों के साये में जो घर छोड़ना पड़ा...
खुद को खुद ही से आज बेघर छोड़ना पड़ा।
वो शहर की रौशनी क्या खाक सुकून देगी...
जिसके लिए मुझे अपनी माँ का आँचल छोड़ना पड़ा।

जब मैं पहली बार फरीदाबाद की सरहदों में दाखिल हुआ, तो सब कुछ धुंधला था। ऊँची इमारतें, शोर मचाती गाड़ियाँ और भागती हुई दुनिया। वह शहर मेरे लिए अनजान था और मैं उस शहर के लिए। जब मैं पहली बार अपनी बड़ी भाभी से मिला, तो मेरे ज़हन में यादों का कोई कोना खाली न था। मैंने बस चुपचाप उनकी दी हुई रोटी खाई और नींद की आगोश में खुद को छिपा लिया।

अगले दिन सूरज की पहली किरण के साथ मेरा सामना अपने दो भतीजों, नितिन और सौरव से हुआ। नितिन मुझसे उम्र में बस कुछ ही साल छोटा था, पर उस वक्त मेरी मानसिक अवस्था ने मुझे उनसे कोसों दूर कर दिया था।

जब मैं घर से बाहर निकला, तो लोगों की कानाफूसी मेरे कानों तक पहुँच रही थी। वे मेरी बीमारी को देख रहे थे, मेरे इंसान होने को नहीं। तभी रमन भैया पास आए और मेरा नाम पूछा। उस वक्त डर और बीमारी का आलम यह था कि मैंने सभ्यता की मर्यादा लांघ दी और उन्हें गाँव की भाषा में खरी-खोटी सुनाकर वहाँ से भाग निकला।

खामोश लबों पर आज एक तूफान सा है...
मेरा अपना ही वजूद अब मुझ पर अनजान सा है।
दुनिया देख रही है मेरी तकलीफों का तमाशा...
मेरा हर जख्म यहाँ बस एक नाम-निशान सा है।

रमन भैया ने जब भाभी से मेरी शिकायत की, तो उन्होंने बड़े धैर्य और ममता से मुस्कुराकर कहा—"उसे अभी यहाँ के तौर-तरीके नहीं पता।" वह मुस्कान सिर्फ एक जवाब नहीं थी, बल्कि मेरे प्रति उनकी करुणा थी। जब उन्होंने मुझे समझाया, तो मेरे पास कहने को कुछ न था। मैं बस एक अपराधी की तरह चुपचाप खड़ा रहा।

फिर बड़े भाई मुझे अस्पताल ले गए। वो दवाइयाँ, वो सफेद दीवारें और भाई का अटूट भरोसा—धीरे-धीरे रंग लाने लगा। समय का मरहम लगा और मैं धीरे-धीरे उस अंधेरे से बाहर आने लगा।

कलम, कहानी और तुम के पन्नों पर आज जब मैं यह लिख रहा हूँ, तो महसूस होता है कि इंसान तब नहीं हारता जब वो बीमार होता है, वो तब हारता है जब अपनों का साथ छूट जाता है। पर मेरी कहानी में अपनों ने मुझे हारने नहीं दिया।

जो कह न सका, आज वो लिख रहा हूँ...
गिरे हुए आँसुओं को शब्द दे रहा हूँ।
अँधेरों ने बहुत कोशिश की मुझे मिटाने की...
मगर मैं दुआओं की रौशनी में जी रहा हूँ।

कलम कहानी और तुम "जो कह न सका, वो लख दया।" लेखक : रंजीत कुमार



स्याही में घुली खामोशियाँ :-

जब मैं अपनी ज़िंदगी के पन्ने समेटकर अपनी कहानी लिखने बैठा, तो ज़हन में एक सवाल बार-बार कौंध(अचानक मन में कोई विचार आना) रहा था—कि इस कहानी को लिखने से आखिर मिलेगा क्या? कौन पढ़ेगा इसे? क्या किसी के पास फुर्सत है एक आम इंसान के संघर्षों को सुनने की? लेकिन इन्हीं ख्यालों के बीच एक नाम उभर कर आया, जिसने मेरी कलम को मकसद दे दिया— 'कलम, कहानी और तुम'।

मेरी बीमारी का साया अब धीरे-धीरे छंट रहा था, और उसके साथ-साथ मेरी उम्र की लकीरें भी बढ़ रही थीं। मन में एक ही तड़प थी कि जैसे ही पूरी तरह ठीक हो जाऊं, बस अपने गाँव लौट जाऊं, अपनी माँ की आंचल की छांव में। गाँव की वो मिट्टी, वो बेफिक्री मुझे अपनी ओर खींच रही थी। पर शायद तक़दीर ने मेरे लिए कुछ और ही सोच रखा था।

किस्मत की लकीरों का खेल भी कितना निराला है...
मैंने जिसे अपना समझा, उसी ने मुझे संभाला है।
गाँव जाने की ज़िद थी पर रास्ते मुड़ गए कहीं और...
जो कह न सका, वो आज शब्दों में लिख डाला है।

जैसे ही सेहत में सुधार हुआ, बड़े भाई ने फैसला सुनाया कि मैं उनके पास फरीदाबाद में ही रहूँगा। उनके मन में शायद ये डर था कि अगर मैं वापस गाँव गया, तो कहीं फिर से उसी बीमारी की चपेट में न आ जाऊँ। उनकी फिक्र ने मेरे पाँव गाँव जाने से रोक दिए। मम्मी-पापा से बात हुई और आखिरकार, मेरा नया ठिकाना फरीदाबाद बन गया।

शुरुआत में यहाँ का शोर, ये भागदौड़ और ये अनजान शहर मुझे अपना नहीं लगता था। दिल हमेशा वहीं गाँव की पगडंडियों पर भटकता रहता। लेकिन वक्त के साथ सब बदलने लगा। मेरे दोनों भतीजों की मासूमियत और उनकी शरारतों ने मेरे सूनेपन को भरना शुरू कर दिया। उनके साथ हँसते-खेलते कब मैं फरीदाबाद के रंग में रंग गया, मुझे पता ही नहीं चला।

अजनबी शहर भी अब मुझे अपना सा लगता है...
हर अधूरा ख्वाब अब एक सपना सा लगता है।
रिश्तों की गर्माहट ने बदला है जीने का अंदाज़...
जो कह न सका, वो आज शब्दों में लिख डाला है।

वक्त अपनी रफ़्तार से गुज़रता रहा। कुछ समय बाद भैया और भाभी ने मेरा दाखिला स्कूल में करा दिया। एक नई शुरुआत, नई उम्मीदें और हाथ में थमी हुई कलम। उस दिन मुझे अहसास हुआ कि शायद ये बीमारी, ये शहर का बदलाव और ये नया मोड़, सब उस कहानी का हिस्सा थे जिसे दुनिया को पढ़ना बाकी था।

किताबें अब मेरी सबसे अच्छी हमराज़ बन गई हैं...
खामोश धड़कनें अब एक नई आवाज़ बन गई हैं।
कलम पकड़कर मैंने दर्द को स्याही में बदल दिया...
जो कह न सका, वो आज शब्दों में लिख डाला है।

कलम कहानी और तुम "जो कह न सका, वो लख दया।" लेखक : रंजीत कुमार



अनकही यादों का सफर :-

यादें भी बड़ी कमाल की चीज़ होती हैं! मेरी नज़र में यादों के बिना जीवन एक कोरे कागज़ जैसा है, जिसका कोई वजूद नहीं। ये कभी पलकों को भिगो देती हैं, तो कभी होंठों पर मुस्कान सजा देती हैं। इन्हीं यादों की उंगली थामकर मैं अपनी ज़िंदगी के सफर में पीछे मुड़कर देखता हूँ।

वो दिन आज भी ताज़ा है जब मेरा दाखिला विवेकानंद पब्लिक स्कूल में हुआ था। मन में घबराहट थी—न कोई पहचान, न कोई ठिकाना। स्कूल की उन बड़ी दीवारों के बीच मैं खुद को बहुत छोटा और सहमा हुआ महसूस कर रहा था। मुझे तो ये भी नहीं पता था कि मेरी कक्षा कौन सी है। अगले दिन जब मैं स्कूल पहुँचा, तो आँखें बस एक चिर-परिचित चेहरे को ढूंढ रही थीं—मेरा भतीजा नितिन।

डर का आलम ये था कि किसी से रास्ता पूछने की हिम्मत तक न थी। बहुत तलाश के बाद जब नितिन दिखा, तो जैसे डूबते को तिनका मिल गया। मैं बिना कुछ सोचे-समझे उसकी क्लास में जाकर सबसे पीछे बैठ गया। जब क्लास टीचर आई और उन्होंने मेरा नाम पूछा, तो डर के मारे गले से आवाज़ ही नहीं निकली। बस दबी आवाज़ में इतना कह पाया कि मेरा नया एडमिशन है। पूरा दिन उसी अनजान कक्षा में बीत गया। छुट्टी के बाद जब नितिन ने बताया कि "चाचा, ये आपकी क्लास नहीं थी," तब मुझे अपनी नादानी पर हंसी भी आई और घबराहट भी हुई। घर जाकर जब यह बात बड़े भाई साहब को पता चली, तो अगले दिन वो खुद स्कूल आए और मुझे मेरी सही मंज़िल यानी 'फर्स्ट हिंदी मीडियम' की क्लास तक पहुँचाया।

शुरुआत में मैं अकेला था, डरा हुआ था। बीमारी की वजह से पढ़ाई में भी थोड़ा कमज़ोर था। लेकिन फिर मेरी मुलाकात मनीष से हुई। वो भी गाँव से था, शायद इसीलिए हम दोनों के तार जल्दी जुड़ गए। फिर क्या था... हम साथ बैठते, साथ खाते और साथ में ही मैडम की डांट और पिटाई भी खाते। मनीष सिर्फ मेरा दोस्त नहीं, मेरा सहारा बन गया था। जैसे-जैसे दिन गुज़रे, हमारी दोस्ती की जड़ें और गहरी होती गईं।

आज जब पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो समझ आता है कि स्कूल का वो सफर तो खत्म हो गया, दोस्त भी बिछड़ गए, पर वो कोमल यादें आज भी सीने में महकती हैं।

बचपन की वो गलियाँ, वो स्कूल का मंज़र याद आता है,
अकेलेपन के उस शोर में, वो यार पुराना याद आता है।
बीमारी ने रोकी थी रफ़्तार, पर मनीष का हाथ साथ था,
बिछड़ गए सफर में हम, पर वो बिताया हर लम्हा साथ था।
अधूरी रह गई बातें, मगर ज़ख्म यादों ने सी दिया,
कलम, कहानी और तुम—जो कह न सका, वो लिख दिया।

लेखक : रंजीत कुमार

स्कूल का वो सफर: नया डर, जब मैं अपनी ही क्लास में 'चाचा' बन गया :-

स्कूल के सफर में आगे बढ़ते-बढ़ते अब मैं पाँचवीं क्लास में आ गया था। इसी मोड़ पर मेरी बड़ी भाभी और बड़े भाई ने मिलकर एक बड़ा फैसला लिया—उन्होंने मुझे हिंदी मीडियम से निकालकर नितिन के साथ इंग्लिश मीडियम में डाल दिया। चूंकि मैं उम्र में नितिन से बड़ा था, इसलिए घर वालों को लगा कि आगे चलकर कोई मुझे कुछ उल्टा-सीधा न बोले या पढ़ाई में फासला न आए, बस इसी वजह से मुझे नितिन के साथ एक ही क्लास में कर दिया गया। एक तरफ तो मैं बहुत खुश था कि अब हर वक्त नितिन के साथ रहूँगा, पर सच कहूँ तो अंदर से एक अनजाना डर भी लग रहा था।

दिल में अजीब सी कशमकश थी—एक तरफ नई क्लास में जाने की खुशी, तो दूसरी तरफ अपने पुराने दोस्तों को खोने का एक गहरा डर। मैं अक्सर उन यादों में खो जाता, जहाँ मैं अपने पुराने दोस्तों के साथ खेलता था, हँसता था और एक साथ स्कूल आया-जाया करता था। पर अब, वो सब कुछ पीछे छूटने वाला था। अगले दिन जब मैं नई क्लास में गया, तो सब कुछ पराया सा लगा। मैं चुपचाप सबसे पीछे वाली सीट पर अकेला बैठ गया। मेरा कोई दोस्त नहीं था, नई क्लास थी और नए स्टूडेंट्स थे। यहाँ तक कि नितिन भी मुझसे अलग, दूसरी सीट पर बैठा था। तभी क्लास मैडम अंदर आईं। उन्होंने मुझे देखा, खड़ा किया और मुस्कुराते हुए बोलीं, "तुम फिर आ गए?" मैंने थोड़ा हिचकिचाते हुए कहा, "हाँ मैडम।" मैडम ने कहा, "अच्छा है! चलो, अब सब लोग अपनी इंग्लिश की किताब निकालो और उसे पढ़ो।"

मैडम की यह बात सुनते ही मेरे हाथ-पांव ठंडे हो गए, अंदर एक खौफ बैठ गया। मुझे इंग्लिश पढ़ना बिल्कुल नहीं आता था, और इतनी हिम्मत भी नहीं थी कि मैं मैडम के सामने खड़े होकर यह सच कबूल कर सकूं। जैसे ही मैंने कांपते हाथों से किताब खोली और पहला चैप्टर निकाला, मैडम की आवाज गूंजी, "चैप्टर की हेडिंग पढ़ो!"
उस चैप्टर की हेडिंग का नाम था—"FAMILY"।

मुझे तो 'फॅमिली' का 'फ' भी नहीं पता था। मैं मन ही मन स्पेलिंग मिलाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन शब्द बन ही नहीं रहे थे। मैं सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा और क्लास के सारे बच्चे मुड़-मुड़कर मुझे ही देख रहे थे। मैडम चलकर मेरे पास आईं और थोड़ा सख्त लहजे में बोलीं, "इंग्लिश पढ़ना नहीं आता है क्या?" मैंने डरते-डरते धीरे से कहा, "नहीं..." मैडम को गुस्सा आ गया, उन्होंने तल्ख आवाज में कहा, "बैठ जाओ!"

जब मैं बैठा, तो पूरी क्लास की नजरें मुझ पर टिकी थीं। उस वक्त मुझे इतना बुरा लगा, इतनी ग्लानि महसूस हुई कि मन कर रहा था कि जमीन फट जाए और मैं उसमें समा जाऊं। मैं सोच रहा था कि कहाँ आ गया मैं!

एक तो मैं पढ़ाई में वैसे ही थोड़ा कमजोर था, ऊपर से यह इंग्लिश का पहाड़!
खैर, वक्त का पहिया घूमता रहा। जैसे-तैसे मैं पढ़ता गया और धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया। इसी बीच, जब क्लास के सारे बच्चों को यह पता चला कि मैं रिश्ते में नितिन का सगा 'चाचा' हूँ और उसी की क्लास का क्लासमेट भी, तो सबको बड़ा अजीब लगा। धीरे-धीरे दिन बीतते गए और क्लास के बच्चे मुझे मेरे असली नाम की जगह 'चाचा' कहकर बुलाने लगे। देखते ही देखते, मैं पूरे स्कूल में 'चाचा' नाम से फेमस हो गया! इसी 'चाचा' नाम के तमगे के साथ मैंने पाँचवीं पास की, फिर छठी भी पूरी कर ली और आखिरकार नितिन के साथ सातवीं क्लास में आ गया।

सातवीं क्लास में आते-आते अब मेरे कुछ नए दोस्त बन चुके थे, लेकिन दिल के किसी कोने में मैं आज भी अपने पुराने दोस्त मनीष को बहुत याद करता था। मन में अक्सर यह ख्याल आता कि शायद, वो भी मुझे कहीं याद करता होगा...

एक दिन, जब मैं अपनी सीट पर बैठा पुरानी यादों के इसी झरोखे में खोया हुआ था, तभी एक लड़की आई और सीधे मेरे पास वाली सीट पर बैठ गई। मैंने उस पर कोई खास ध्यान नहीं दिया। मैं तो बेंच पर अपना सिर नीचे किए (हेड-डाउन करके) अपने पुराने दोस्त की यादों को समेट रहा था।

तभी उस लड़की ने मेरी तरफ रुख किया और बोली, "हेलो!"
मैं कुछ नहीं बोला, चुप रहा।
वह फिर से थोड़ी तेज आवाज में बोली, "हेलो! सो रहे हो क्या?"
मैं फिर भी टस से मस नहीं हुआ और खामोश रहा।

जब उसने देखा कि मैं कोई जवाब नहीं दे रहा, तो उसने एक शरारत की। उसने कागज का एक छोटा सा टुकड़ा मोड़ा और धीरे से मेरे कान के अंदर डाल दिया! कान में सनसनी होते ही मैं एक झटके से उठकर बैठ गया। मैंने गुस्से में नजर घुमाई तो देखा कि एक नई लड़की मेरी ही सीट पर बैठी मुझे देख रही थी, और उसके चेहरे पर एक शरारती मुस्कान थी।

वह मुझे देखकर हँस रही थी। मुझे तेज गुस्सा आया, मैं झल्लाकर बोला, "पागल लड़की! दिमाग-विमाग नहीं है क्या? जो मेरे साथ ऐसी हरकत की!"
वह बड़ी सादगी से बोली, "अरे, मैं तुमको कब से उठा रही थी, पर तुम कुछ जवाब ही नहीं दे रहे थे! इसीलिए तुमको ऐसे उठाना पड़ा।"
मैंने त्योरियां चढ़ाते हुए कहा, "ऐसे कौन उठाता है भला?"
वह मुस्कुराकर बोली, "मैं उठाती हूँ!"

मेरा गुस्सा और बढ़ गया। मैंने तल्ख होकर कहा, "हो गया तुम्हारा? तो चलो, अब उठो यहाँ से!"
वह अड़ गई, "क्यों?"
मैंने कहा, "बस ऐसे ही!"
वह बोली, "नहीं उठूंगी!"
मैंने फिर पूछा, "क्यों?"
उसने पलटकर वही सवाल दागा, "ऐसे कौन उठाता है?"
मैंने चिढ़कर कहा, "मैं उठाता हूँ!"
वह ठहाका लगाकर बोली, "हाहा! क्यों नहीं!"

मैं उसे कुछ और खरी-खोटी सुनाने ही वाला था कि तभी उसने बात बदलते हुए पूछा, "वैसे, तुम्हारा नाम क्या है?"
मैंने मुंह बनाते हुए कहा, "क्यों बताऊं?"
तभी क्लास के एक लड़के ने पीछे से आवाज लगाई, "अरे! इसका नाम 'चाचा' है!"

यह सुनते ही वह लड़की जोर से हँसने लगी। उसका हँसना मेरे गुस्से पर घी का काम कर गया।
लड़की हँसते हुए बोली, "अच्छा नाम है, चाचा जी!"
मैंने भी चिढ़कर कहा, "क्यों नहीं! वैसे... तुम्हारा नाम क्या है?"
वह भी कम नहीं थी, बोली, "जब तुमने नहीं बताया कि तुम्हारा नाम क्या है, तो मैं क्यों बताऊं?"
मैंने बात खत्म करने के लहजे में कहा, "ठीक है, मेरा नाम रंजीत है, अब बताओ तुम्हारा नाम क्या है?"
वह फिर से चिढ़ाते हुए बोली, "क्यों बताऊं!"
अब मेरे सब्र का बांध टूट गया, मैं गुस्से में बोला, "मत बताओ! मुझे जानना भी नहीं है!"

तभी क्लास में मैडम दाखिल हुईं। उन्होंने आते ही पूरी क्लास पर नजर दौड़ाई और बोलीं, "क्लास में एक नई लड़की आई है, कौन है वो? खड़ी हो।"
तभी मेरे पास बैठी वह लड़की अपनी जगह पर खड़ी हुई और बोली, "मैडम जी, मैं आई हूँ।"
मैडम ने कहा, "ओके, अपना नाम बताओ सबको।"
लड़की ने पूरी क्लास के सामने कहा, "मेरा नाम मोनिका है।"
मैडम ने सिर हिलाया, "ठीक है, अब बैठ जाओ। लेकिन तुम आगे की सीटें छोड़कर इतनी पीछे क्यों बैठी हो?"
मोनिका ने मासूमियत से जवाब दिया, "मैडम जी, आगे कोई सीट खाली नहीं मिली, इसलिए पीछे बैठ गई।"
मैडम बोलीं, "ठीक है, लेकिन कल से आगे आकर बैठना।"
मोनिका ने कहा, "ओके मैडम जी!"

जैसे ही मोनिका बैठी, मैंने तंज कसते हुए धीरे से कहा, "अच्छा है!"
मोनिका ने हैरान होकर पूछा, "क्या अच्छा है?"
मैंने कहा, "नाम!"
मोनिका ने फिर मुझसे पूछा, "वैसे, तुम आगे क्यों नहीं बैठते?"
मैंने अकड़कर कहा, "मेरी मर्जी!"
मोनिका ने भी उसी अंदाज में कहा, "ओह, अच्छा!"

मेरे मन में उस वक्त बस एक ही ख्याल चल रहा था—ये लड़की पूरी पागल है, और ये मुझे भी पागल करके ही दम लेगी! मैं यही सब सोचते-सोचते जबरदस्ती अपनी पढ़ाई पर ध्यान लगाने लगा। मोनिका बीच-बीच में मुझे ही देख रही थी, लेकिन इस बार उसने कुछ बोला नहीं।

जब स्कूल की घंटी बजी और छुट्टी हुई, तो मोनिका बैग संभालते हुए मुझसे बोली, "कल आगे बैठना मेरे साथ, मुझे तुमसे बहुत सारी बातें करनी हैं!"
मैंने हैरान-परेशान होकर पूछा, "क्यों भाई? क्यों बैठूं?"
मोनिका ने बेहद मासूमियत से कहा, "क्लास में मेरा और कोई दोस्त नहीं है, और मैंने अभी सिर्फ तुमसे ही बात की है। और वैसे भी... तुम मुझे थोड़े पागल नजर आते हो!"

यह सुनते ही मेरा पारा सातवें आसमान पर पहुंच गया। मैंने गुस्से में उसकी तरफ देखा और कहा, "क्यों नहीं, पागल लड़की को तो सब पागल ही नज़र आएगा!"

यही आखिरी जुमला बोलकर, मैं अपना बैग उठाकर तेजी से क्लास से बाहर निकल गया।

हिंदी मीडियम की वो यादें, वो यार पुराने छूट गए,
इंग्लिश के उस नए खौफ में, अंदर से हम टूट गए।
वक्त बदला, नाम बदला, 'चाचा' कहकर सब हँसते थे,
पर दिल में तो बस यादों के पुराने मंजर बसते थे।

तभी एक अजनबी आई, जिसने खामोशी को झकझोर दिया,
कान में चुपके से वो कागज डालकर, मेरा ध्यान अपनी ओर किया।
वो शरारत, वो गुस्सा, वो उसकी पहली मुलाकात का मंजर,
जाते-जाते कह गई कि तुम पागल से दिखते हो इस दिल के अंदर।

मैंने भी मुस्कुराकर गुस्से में, महफिल को ये पैगाम दिया,
हँसकर उसकी आँखों में, मैंने आखिरी ये जवाब दिया—
कि तुम खुद जैसी हो, तुम्हें दुनिया में वैसा ही मंजर नजर आएगा,
"क्यों नहीं, पागल लड़की को तो सब पागल ही नज़र आएगा!"

कलम कहानी और तुम "जो कह न सका, वो लख दया।" लेखक : रंजीत कुमार



यादों का सफर :-

कहानी को डायरी के पन्नों पर उतारते-उतारते, मैं अतीत के उन गलियारों में खो गया जहाँ उस पगली की यादें महफूज थीं। वो दिन भी क्या दिन थे, जब मैं उसकी हरकतों से बेहद परेशान रहता था। मन में बस यही एक सवाल बार-बार घूमता रहता— आखिर क्यों वो मेरे ही पास आई? क्यों रोज़ आकर मेरी ही सीट पर बैठ जाती?

उन दिनों ये बातें मुझे रात-रात भर सोने नहीं देती थीं। बिस्तर पर लेटे-लेटे मैं यही सोचकर परेशान होता रहता कि कल जब स्कूल जाऊंगा, तो क्या होगा? क्या वो फिर से मेरे पास आकर बैठ जाएगी? यही सब सोचते-सोचते न जाने कब मेरी आँख लग गई।

अगले दिन जब मैं क्लास में पहुँचा, तो मेरी नज़रें सबसे पहले उसी जगह गईं। देखा, तो आज वो क्लास में नहीं थी। मैंने राहत की एक लंबी साँह ली, मानो छाती से कोई बड़ा बोझ उतर गया हो। मैं अपनी सीट पर जाकर बैठ गया और मन ही मन बेहद खुश था कि चलो, आज का दिन सुकून से बीतेगा, आज मैं अकेला रहूँगा।

कुछ देर बाद, मैं करीब पाँच मिनट के लिए क्लास से बाहर बाथरूम गया। लेकिन जब वापस लौटकर क्लास में कदम रखा, तो मेरे पैरों तले जमीन खिसक गई! सामने मोनिका मेरी ही सीट पर बैठी थी। उसे देखते ही मेरा दिमाग एक बार फिर झल्ला उठा।

जैसे ही मोनिका की नज़र मुझ पर पड़ी, उसने मुस्कुराकर कहा, "हेलो चाचा जी!"

मुझे इतना गुस्सा आया कि मैंने तमतमाते हुए कहा, "मेरा नाम रंजीत है, न कि चाचा! समझी तुम?"

वो शरारत से हंसते हुए बोली, "ओके चाचा जी! मेरा मतलब... रंजीत!"

मैं मन ही मन सोच रहा था कि भगवान, मैं इस लड़की का क्या करूँ! तभी उसने मुझसे पूछा, "तुम हमेशा पीछे क्यों बैठते हो?"

मैंने रूखेपन से जवाब दिया, "क्योंकि मैं पीछे ही बैठता हूँ।"

"नहीं, तुम आज से आगे बैठोगे!" मोनिका ने हुक्म चलाने वाले लहजे में कहा।

"क्यों बैठूं मैं?" मैंने चिढ़कर पूछा।

"मैंने कहा न! इस स्कूल में मेरा कोई दोस्त नहीं है। अगर तुम मेरे साथ आगे बैठ जाओगे, तो कुछ बिगड़ नहीं जाएगा तुम्हारा, समझे?"

"नहीं!" मैंने साफ मना किया और अपनी ज़िद पर अड़ा रहकर पीछे जाकर बैठ गया।

मोनिका पलटकर कुछ और बोलती, तभी क्लास टीचर अंदर आ गईं और उन्होंने कहा, "सब लोग अपनी-अपनी बुक्स निकालो।" मोनिका ने मुझे घूरकर देखा, गुस्से में अपना मुँह फुलाया और आगे जाकर बैठ गई। मैंने मन ही मन भगवान का शुक्रिया अदा किया कि चलो, फिलहाल तो पीछा छूटा।

लेकिन यह राहत ज्यादा देर की नहीं थी। जैसे ही लंच बेल बजी, वो तुरंत मेरे पास आ धमकी और बोली, "चलो, खेलते हैं!"

मैंने सीधे शब्दों में कहा, "मुझे तुम्हारे साथ नहीं खेलना, समझी तुम?"

"क्यों नहीं खेलना?" उसने आँखें बड़ी करके पूछा।

"बस मेरा मन नहीं है।"

"ओह! ठीक है, मत खेलो," मोनिका ने चिढ़कर कहा।

मैंने भी बात खत्म करते हुए कहा, "हाँ, नहीं खेलूँगा।"

वह तपाक से बोली, "ठीक है, मैं भी अब से तुमसे कभी बात नहीं करूंगी!"

मैंने भी मजे लेते हुए कहा, "तो तुमसे बोला किसने है बात करने को?"

"हाँ-हाँ, किसी ने नहीं बोला, पर मैं तो फिर भी बात करूँगी, समझे?" उसने अपनी ज़िद दोहराई।

मैंने तंग आकर कहा, "तुम सच में पागल हो, समझी!"

वो जोर से खिलखिलाकर हंस पड़ी, "हाहा! क्यों नहीं? एक पागल लड़के को तो दुनिया का हर इंसान पागल ही नज़र आएगा न!"

मैंने पलटकर कहा, "सब नहीं, बस तुम पागल हो!"
मेरी इस बात पर वो सच में गुस्सा हो गई और पैर पटकती हुई वहाँ से चली गई।

मेरी कहानी में हम दोनों की शुरुआत कुछ ऐसी ही खट्टी-मीठी तकरार से हुई थी। आज जब मैं उन पुरानी यादों के समंदर में डूबता हूँ, तो सोचता हूँ कि सच में, वह दिन भी क्या दिन थे! हम दोनों हर दिन ऐसे ही लड़ते, झगड़ते और

खेलते थे। धीरे-धीरे हमारी यह लड़ाई दोस्ती में बदल गई और हम क्लास में हमेशा साथ रहने लगे।

पर मेरी किस्मत में यह दोस्ती भी कहाँ टिकने वाली थी। कुछ ही समय बीता था कि एक दिन अचानक वो हमेशा के लिए स्कूल छोड़कर चली गई। उसके जाने के बाद मेरा मन बेहद उदास हो गया। मैं खुद से ही सवाल करता कि मैं आखिर क्यों उदास हूँ? वो तो महज़ एक क्लासमेट ही तो थी! लेकिन दिल को बहुत बुरा लगा था... ठीक वैसे ही, जैसे मेरा सबसे अच्छा दोस्त मनीष मुझे छोड़कर चला गया था, वैसे ही वो भी चली गई।

मैंने कुछ देर शांत रहकर इस खालीपन को महसूस किया और फिर भारी मन से खुद को ढाँढस बंधाते हुए कहा— "जो होता है, अच्छे के लिए होता है।"

और बस, यादों के इसी उतार-चढ़ाव भरे सफर के साथ चलते-चलते, मैं ज़िंदगी के एक नए पड़ाव, यानी अपनी ७वीं (7th) क्लास में आ गया!

वो बचपन की तकरार, वो मासूम सी लड़ाइयाँ,
याद आती हैं आज भी वो हसीन परछाइयाँ।

पहले जिससे पीछा छुड़ाने की दुआ करते थे,
आज उसी की याद में ये आँखें भर आया करती हैं,
कुछ अधूरी कहानियाँ बस ऐसे ही दिल में घर कर जाया करती हैं,
और में इन यादो के सफर के साथ चलते चलते 7 वी क्लास में आ गया !

कलम कहानी और तुम "जो कह न सका, वो लख दया।"" लेखक : रंजीत कुमार



कलम, कहानी और तुम: एक अधूरा बचपन:-

जिंदगी बहुत लंबी होती है... न जाने कब, कैसे और किस मोड़ पर मैं बचपन की दहलीज़ लांघकर सातवीं क्लास में आ गया, मुझे खुद पता नहीं चला। मेरे बचपन की पोटली में यादों का एक बहुत बड़ा सैलाब था, पर वक्त के साथ मैं उनमें से कुछ ही यादों को पन्नों पर बयां कर सका। जैसा कि मैंने हमेशा सोचा था कि जिंदगी बहुत लंबी होती है—जीने के लिए, ख्वाब देखने के लिए। मगर कुछ हादसों ने सिखाया कि हर किसी के हिस्से में यह लंबाई नहीं आती। किसी-किसी के लिए यह जिंदगी इतनी लंबी नहीं होती।

कहानी के इस सफर में जब मैं सातवीं क्लास में पहुंचा, तो मेरे भीतर खुशियों और दुखों का एक अजीब सा मेल था। खुशी इस बात की थी कि मैं आगे बढ़ रहा था, नए लड़कों यानी क्लास के नए स्टूडेंट से मिल रहा था। पर एक खामोश दुख यह भी था कि मेरे पुराने दोस्त मुझसे छूट चुके थे। सातवीं क्लास की उस चौखट पर मुझे कई नए चेहरे देखने को मिले।

मेरी जिंदगी वैसी आसान नहीं थी जैसी दूर से दिखती है। मैं बहुत दुबला-पतला सा लड़का था, दिखने में भी कोई खास अच्छा नहीं—सबसे अलग, सबसे जुदा। क्लास में मेरा कोई ऐसा पक्का दोस्त नहीं था, जिसे मैं अपना कह सकूं। हां, ऐसा नहीं था कि मेरे दोस्त नहीं थे, दोस्त थे... मगर वैसे नहीं जो हर वक्त मेरे साथ खड़े रहें, जो मेरे अंदर के खालीपन को समझ सकें। ऊपर से, मैं पढ़ाई-लिखाई में भी बहुत कमजोर था।

नए चेहरों के मेले में, पुराने यार छूट जाते हैं,
समझता कौन है दिल को, यहां सब रूठ जाते हैं।
समझ आता नहीं क्यों ख्वाब का शीशा बिखरता है,
किसी के वास्ते ये जिंदगी इतनी भी लंबी नहीं होती।

एक दिन क्लास का वो मंजर मुझे आज भी साफ याद है। क्लास में मैडम ने अचानक सब बच्चों से एक सवाल किया, "तुम सब बड़े होकर क्या बनना चाहते हो?"

यह सवाल जैसे ही मेरे कानों में पड़ा, मेरे खुद के भीतर एक हलचल सी मच गई। मैं सोचने लगा कि आखिर मैं बड़े होकर क्या बनना चाहता हूं? सवाल बड़ा खूबसूरत था, मगर मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं था। मुझे पता ही नहीं था कि मेरी मंजिल क्या है। मैं उसी सवाल के ख्यालों के समंदर में डूब गया, सुध-बुध खो बैठा।

वहां क्लास में मैडम एक-एक करके सब बच्चों से पूछ रही थीं। हर बच्चा अपनी धुन में कुछ न कुछ जवाब दे रहा था। कोई चिल्लाकर बोला—'पुलिस', कोई बोला—'टीचर', तो कोई मासूमियत में बोल पड़ा—'मैं बड़ा होकर शादी करूंगा!' मैडम बच्चों के इन अजीबोगरीब जवाबों को सुनकर हंस रही थीं, मजे ले रही थीं। और मैं? मैं बस अपनी ही दुनिया में, उन ख्यालों के पीछे भाग रहा था।

सबका नंबर आने के बाद आखिरकार मेरा नंबर आया। लेकिन मैं तो होश में था ही नहीं। मैडम ने मुझे आवाज दी, "रंजीत!"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

उन्होंने थोड़ा और करीब आकर फिर कहा, "रंजीत!"

मैं तब भी खामोश था, जैसे किसी गहरी नींद में खोया हुआ कोई मुसाफिर होऊं।

तभी अचानक मैडम ने जोर से चिल्लाकर कहा, "रंजीत!"

उनकी कड़क आवाज सुनते ही मैं एक झटके में अपनी सीट से खड़ा हो गया। पूरी क्लास की नजरें मुझ पर थीं और सब बच्चे मुझे देखकर जोर-जोर से हंस रहे थे। मैडम ने तंज कसते हुए कहा, "कहाँ खोए थे चाचा जी?"
मैंने नजरें झुकाकर धीरे से कहा, "कहीं नहीं मैडम जी..."
मैडम मुस्कुराईं और बोलीं, "वह! अच्छा तो अब बताओ, बड़े होकर क्या बनना है?"

मैं बिल्कुल शांत खड़ा रहा। मेरे होंठ जैसे सिल गए थे। मुझे सच में नहीं मालूम था कि मैं क्या बनना चाहता हूं। मैडम ने फिर टोका, "बोलो रंजीत!"

तभी अचानक घबराहट में मेरी नजर डेस्क पर रखी साइंस की किताब पर पड़ी। और मैंने बिना सोचे-समझे एकदम से बोल दिया, "मैडम, मुझे साइंटिस्ट बनना है!"

यह सुनना था कि मैडम और क्लास के सारे बच्चे पेट पकड़कर जोर-जोर से हंसने लगे। उन सबको हंसता देख, मैं भी अपनी बेबसी पर हंस पड़ा। क्योंकि जो मैं बोला था, वो मैं कभी नहीं बन सकता था। मैं पढ़ाई में बहुत कमजोर था। और विडंबना देखिए, जिस 'साइंटिस्ट' बनने का ख्वाब मैंने पूरी क्लास के सामने देख लिया था, मैं उसी के सबसे मुख्य सब्जेक्ट यानी साइंस के क्लास एग्जाम में हमेशा फेल हो जाता था। हालांकि, भगवान की कृपा से मैं फाइनल एग्जाम में जैसे-तैसे पास हो जाता था, लेकिन शुरुआत के जितने भी क्लास टेस्ट होते थे, साइंस में मेरा फेल होना तय था। बस यही वजह थी कि मैडम और बच्चे हंस रहे थे कि—जो लड़का साइंस के मामूली टेस्ट में फेल हो जाता है, वो साइंटिस्ट कैसे बनेगा?

इसी तरह, कभी खुशी तो कभी गम के साये में, खट्टी-मीठी यादों के साथ मेरा बचपन धीरे-धीरे बीत रहा था।

हकीकत से बहुत महरूम थे वो ख्वाब जो देखे,
ज़माने ने उड़ाए होश, वो जज्बात जो देखे।
हँसा करती थी दुनिया मेरी नादान ख्वाहिश पर,
मगर हँसने को ये जिंदगी इतनी भी लंबी नहीं होती।

जैसा कि मैंने पहले कहा था... किसी की जिंदगी बहुत लंबी होती है, तो किसी की बहुत छोटी। और यहाँ 'छोटी जिंदगी' से मेरा मतलब रमन भैया से है। हां, वही रमन भैया, जिन्हें कभी बचपन की नासमझी में मैंने गाली दे दी थी। जब मैं पहली बार फरीदाबाद आया था, तो सबसे पहले मेरी मुलाकात उन्हीं से हुई थी।
रमन भैया दिखने में बेहद अच्छे, सलीके वाले थे और पढ़ाई-लिखाई में तो उनका कोई मुकाबला ही नहीं था, बहुत होशियार थे। वो हमारे पड़ोसी थे। जब भी मुझे पढ़ाई में कोई दिक्कत होती, मैं बेझिझक किताब उठाकर उनके पास चला जाता। रमन भैया ने कभी मुझे डांटा नहीं, कभी मना नहीं किया। वो बहुत प्यार और तसल्ली से मुझे एक-एक चीज पढ़ाते और समझाते थे।
पढ़ाई के अलावा रमन भैया के साथ हमारा बचपन खेलकूद में भी बीतता था। कभी घूमना होता, तो हम साथ जाते। भैया को क्रिकेट खेलने का जुनून था। मुझे क्रिकेट थोड़ा-बहुत ही पसंद था, मेरी दिलचस्पी चेस (शतरंज) खेलने में ज्यादा थी। मगर भैया दिन-रात क्रिकेट खेलते थे, और शायद यही क्रिकेट धीरे-धीरे उनकी एक बुरी आदत बन गया।

वक्त बदला, और भैया क्रिकेट के मैचों में पैसे लगाने लगे। या यूं कहूं कि वो पैसों पर हार-जीत का मैच खेलने लगे (सट्टा खेलने लगे)। शुरुआत में वो कभी मैच जीतते, तो कभी हारते। लेकिन जब लत गहरी हो गई और उनके पास पैसे नहीं बचते, तो वो घर में पैसे मांगने लगे। और जब घरवाले पैसे देने से मना करते, तो घर में रोज-रोज लड़ाइयां होने लगीं। उनका एक छोटा भाई भी था, मनीष। वो भी बहुत सीधा और अच्छा लड़का था। पूरा परिवार इस बात से परेशान रहने लगा।
फिर एक शाम, वो काली शाम आई। मैं रमन भैया के घर अपनी पढ़ाई का कुछ पूछने गया था। वहां पहुंचा तो पता चला कि भैया घर पर नहीं हैं। मैंने देखा कि रमन भैया की मम्मी कमरे के एक कोने में बैठकर फूट-फूटकर रो रही थीं। घर का माहौल देखकर मैं कुछ बोल नहीं पाया और चुपचाप उल्टे पैर वापस लौट आया। रात को मेरी भाभी ने हम सबको खाना खिलाया और खुद रमन भैया के घर उनका हाल-चाल पूछने चली गईं।

मैं अपने बिस्तर पर लेटा-लेटा मन ही मन सोच रहा था कि भैया इतने अच्छे थे, फिर वो इस तरह रात को बिना बताए कहां चले गए? मुझे लगा शायद हमेशा की तरह अपने दोस्तों के पास गए होंगे, सुबह तक आ जाएंगे। मैं यही सोचते-सोचते सो गया।

मगर अगली सुबह जब मेरी आंख खुली, तो पता चला कि भैया रातभर घर नहीं आए। मैं डर गया, पर कुछ बोले बिना चुपचाप स्कूल चला गया। दोपहर को जब मैं स्कूल से थका-हारा वापस आया, तो मंजर और भी खौफनाक था। रमन भैया अब भी नहीं लौटे थे। उनकी मम्मी का रो-रोकर बुरा हाल था। मेरी भाभी उन्हें गले से लगाकर चुप करा रही थी और गली की बाकी औरतें भी ढाढस बंधा रही थीं। रमन भैया के पापा और मनीष भैया उन्हें हर मुमकिन जगह ढूंढ रहे थे। जब थक-हार गए, तो उन्होंने हारकर पुलिस में गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखवाई।

सबने दिन-रात एक कर दिया, पर रमन भैया का कहीं कोई सुराग नहीं मिला। ढूंढते-ढूंढते ऐसे ही दर्दनाक ५ से ६ दिन बीत गए। पूरा मोहल्ला एक अजीब से सन्नाटे में डूब गया था।

वो गलियां ढूंढती हैं अब कदम जिसके दीवाने थे,
वो घर रोता है जिसके वास्ते सब घर के ताने थे।
अचानक यूं मुसाफिर का सफर से टूट जाना क्या,
किसी के वास्ते ये जिंदगी इतनी भी लंबी नहीं होती।

फिर एक सुबह, जब मैं स्कूल से वापस आया, तो गली के मोड़ पर ही मेरे कदम ठिठक गए। मैंने देखा कि मेरे घर और रमन भैया के घर के सामने एक बहुत बड़ा सफेद टेंट (चादर) लगा हुआ था। चारों तरफ अजीब सी चीखें और मातम था।

मैं जैसे-जैसे कदम आगे बढ़ा रहा था, मेरा दिल बैठता जा रहा था। रमन भैया की मम्मी जमीन पर गिरकर जोर-जोर से छाती पीटकर रो रही थीं। उनके घर का हर एक सदस्य, हर सगा-संबंधी आंसुओं के समंदर में डूबा हुआ था। उस मंजर को देखकर, न जाने क्यों मेरी आँखों से भी आंसुओं की धार बहने लगी। कलेजा कांप उठा था।

जब मैंने कांपती आवाज में अपनी भाभी से पूछा, तो पता चला... कि रमन भैया अब इस दुनिया में नहीं रहे। वो हम सबको, अपनी पढ़ाई को, अपने उस क्रिकेट को और इस अधूरी जिंदगी को हमेशा के लिए छोड़कर जा चुके थे। तब मुझे अहसास हुआ कि वाकई... जिंदगी सबके लिए इतनी लंबी नहीं होती।

सफेद चादर में लिपटा वो बदन जब सामने आया,
तो रोई मां, रुआंसा आसमां और घर भी चिल्लाया।
'रंजीत' उस मोड़ पर सीखा कि सांसें रूठ जाती हैं,
किसी के वास्ते ये जिंदगी इतनी भी लंबी नहीं होती।

